जयशंकर प्रसाद जी के नाटकों में राष्ट्र विमर्श

हिमाँशु शर्मा
शोधार्थी
टाँटिया विश्वविद्यालय
श्रीगंगानगर (राज.)

राष्ट्र विमर्श में साहित्य के माध्यम से राष्ट्र की वर्तमान सामाजिक, आर्थिक, साँस्कृतिक एवं सुरक्षा से सम्बन्धित परिस्थितियों, समस्याओं एवं चुनौतियों को केंद्र में रख कर राष्ट्र की उन्नति, सुरक्षा एवं स्थायित्व के लिए हितचिंतन किया जाता हैं। व्यक्तिगत स्तर पर राष्ट्र विमर्श राष्ट्र के निवासी की राष्ट्र के नागरिक के रूप में भूमिका को स्थापित करता हुआ, उसके राष्ट्र के प्रति दायित्वों का भी निर्धारण करता है। किसी व्यक्ति अथवा समूह की किसी राष्ट्र का सत्य अथवा वास्तविक अंश बनने की पात्रता के सम्बद्ध में कुछ मूल्य रूपी नियमों का विधान प्राचीन काल से रहा है। साधारण शब्दों में राष्ट्रीयता का अर्थ किसी राष्ट्र का सदस्य अथवा सम्बद्धता का उद्घोषक होने से ग्रहण किया जाता है, परन्तु यह राष्ट्रीयता की केवल स्थूल अवधारणा है जोकि विश्वसनीय नहीं है। राष्ट्रीयता राष्ट्र के साथ सम्बद्धता का उद्घोषक तो है, परन्तु यह सम्बन्ध भौतिक होने के साथ साथ अभौतिक मानसिक, हृदयजनित, भावनाकेंद्रित एवं सांस्कृतिक एकरूपता जैसे मूल्यों पर आधारित भी होते हैं जो किसी व्यक्ति के उसके राष्ट्र के साथ प्रगाढ़ एवं अक्षुण्ण संबंधों के वास्तविक परिचायक होते हैं। इस प्रकार राष्ट्रीयताश राष्ट्र की भाववाचक संज्ञा होने के कारण अनुभूति का विषय है, जिसके पर्याय के रूप में नागरिकता, राष्ट्रप्रेम, राष्ट्रभक्ति आदि संज्ञाओं का प्रयोग किया जाता है। साहित्य के माध्यम निजी, पारिवारिक, धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, वैचारिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों का राष्ट्र के हित सुरक्षा, संवर्धन, उन्नति हेतु जीवन, धन, सम्पति, व्यवसाय, उपाधि, लाभ आदि ग्रहण एवं राष्ट्रहित में त्याग अथवा उत्सर्ग की भावना राष्ट्रीय भावना एवं संवेदना के उद्धरणों की नियोजना राष्ट्र विमर्श की भी चरम कसौटी है। इस प्रकार जो भाव, वैचारिकता अथवा मूल्य साधारण जीवन में राष्ट्रभक्ति अथवा राष्ट्रहित चिंतन कहलाते हैं, उन्हीं भावों की साहित्यिक अभिव्यक्ति राष्ट्र विमर्श कहलाती है। श्री जयशंकर प्रसाद जी ने भी अपने साहित्य में विशेष रूप से अपने नाटकों के द्वारा स्वराष्ट्र की राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक एवं साँस्कृतिक परिवेश में विद्यमान राष्ट्रीय सुरक्षा, गौरव एवं अस्मिता से संबद्ध समस्याओं का चिंतन एवं प्रस्तुतिकरण ऐतिहासिक घटनाक्रमों के माध्यम से कर राष्ट्र हितचिंतन को साहित्य के वर्ण्य विषय के रूप में स्थापित किया था तथा राष्ट्र विमर्श के बीजारोपण के लिए अपनी उन्नत मेधा शक्ति के द्वारा अपने नाट्य साहित्य में उर्वरा भूमि प्रदान की।

अतीत में भी भारतवर्ष विदेशी शक्तियों के कुचक्रों, षड्यंत्रों एवं सशस्त्र आक्रमणों से पदाक्रांत होता रहा है। उस समय भारतीय शासक किसी राज्य पर विदेशी आक्रमण होने पर क्षुद्र क्षेत्रीय सत्ता के अभिमान एवं आपसी द्वेष एवं प्रतिशोध भावनावश तटस्थ रह कर मिलकर विदेशी आक्रमण का प्रतिरोध न कर पाते थे। जिसके कारण भारत का विस्तृत भूखंड विदेशी शक्तियों के आधीन हो कर विदेशी संस्कृति के मूल्यों, परम्पराओं एवं धार्मिक विश्वासों के अनुयायी होता रहा और देश की सुरक्षा एवं एकता पर प्रश्न चिन्ह लगता रहा। मातृगुप्त का कथन इसी स्थिति को स्पष्ट करता है, "हाँ मुद्गल! इधर तो शकों और हूणों की सम्मिलित सेना घोर आतंक फैला रही है, चारो ओर विप्लव का साम्राज्य है। निरीह भारतीयों की घोर दुर्दशा है।"[१] राजनीति के मूल में राष्ट्रहित और सुरक्षा का भाव समाहित होता है। राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए एक शासक को प्रत्येक प्रकार के त्याग के लिए प्रस्तुत रहना चाहिए। विदेशी सत्ता न केवल राजनैतिक अधिकार करती है अपितु विजित भूभाग को अपनी सत्ता अधीन रखने एवं अपने शासन को स्थाई बनाने के लिए पूर्व शासन के चिन्हों

संस्कृति, गौरव प्रतीकों परम्पराओं धर्म को भी निर्मूल कर देती है। स्कंदगुप्त नाटक में मातृगुप्त की जन्मभूमि कश्मीर विदेशी सत्ता के अधीन हो जाती है। मातृगुप्त को वहां से पलायन करना पड़ता है। मातृगुप्त का कथन इसी स्थिति को स्पष्ट करता है," कश्मीर मंडल में हूणों का आतंक है, शास्त्र और संस्कृत विद्या को पूछने वाला कोई नहीं। मलेच्छाक्रान्त देश छोड़ कर राजधानी में चला आया।"[२] और यह सर्वविदित है कि इतिहास अपने आप को दोहराता है। ऐसी परिस्थिति वर्तमान भारत में भी दृष्टिगोचर हैं।

प्रसाद जी ने विभिन्न पात्रों के माध्यम से बाह्य विदेशी आक्रमणों से उत्पन्न राष्ट्रीय सुरक्षा एवं स्थिरता पर चिंतन किया है। विदेशी आक्रमणों एवं उनके आंतक से राष्ट्रीय सुरक्षा एवं अखंडता पर मंडराते संकट का विवरण स्कन्दगुप्त नाटक में मालव राज्य के दूत के कथन से स्पष्ट होता है," शक राष्ट्रमंडल चंचल हो रहा है, नवागत मलेच्छवाहिनी से सौराष्ट्र भी पदाक्रांत हो चला है, इस कारण पश्चिमी मालव भी अब सुरक्षित नहीं रहा।"[३] धातुसेन का यह कथन भारत भूमि पर विदेशी आक्रमणों के भयावह एवं नृशंस स्वरूप का वर्णन करता है," सप्तसिंधु प्रदेश नृशंस हूणों से पदाक्रांत है, जाति भीत और त्रस्त है और उसका धर्म और असहाय अवस्था में पैरों से कुचला जा रहा है। क्षत्रिय राजा—धर्म का पालन करने वाला राजा—पृथ्वी पर क्यों नहीं रह गया? [४] प्रसाद जी ने सैनिक के इन उद्गारों के द्वारा राष्ट्रीय अस्थिरता में शासक वर्ग की उदासीनता एवं अकर्मण्यता को ओर इंगित कर राष्ट्र अस्थिरता के लिए उत्तरदायी ठहराया है। सैनिक:—"यह राष्ट्र का आपत्तिकाल है, युद्ध की आयोजनाओं के बदले हम कुसुमपुर में आपानकों का समारोह देख रहे हैं। राजधानी विलासिता का केंद्र बन रही है। यहां के मनुष्यों के लिए विलास के उपकरण बिखरे रहने पर भी अपर्याप्त हैं। नये नये साधन और नवीन कल्पनाओं से भी इस विलासिता राक्षसी का पेट नहीं भर रहा। भला मगध के विलासी सैनिक क्या करेंगें?"[५] सैनिक:— यवनों से उधार ली हुई सभ्यता नाम की विलासिता के पीछे आर्य्य जाति उसी तरह पड़ी है, जैसे कुलवधू को छोड़ कर कोई नागरिक वेश्या के चरणों में। देश पर बर्बर हूणों की चढ़ाई और तिस पर भी यह निर्लज्ज आमोद। [६]

राष्ट्र पर भय, संकट के समय निजी एवं क्षुद्र स्वार्थों का त्याग कर राष्ट्रभक्त नागरिक एवं सैनिक से राष्ट्रहित में निर्णय लेने का सन्देश देता पृथ्वीसेन कहता है," महाप्रतिहार, क्या करते हो, यह अंतर्विरोध का समय नहीं है। पश्चिम और उत्तर से काली घटाएं उमड़ रही है। यह समय बलिदान करने का नहीं, आओ! हम लोग गुप्त साम्राज्य के विधान अनुसार चरम प्रतिकार करें। बलिदान देना होगा।[७] राष्ट्र के लिए त्याग के मूल्य को वास्तविक एवं उच्चतम अभिव्यंजना स्कंदगुप्त नाटक का पात्र बंधुवर्मा प्रदान करता है। मालव राज्य एवं उसकी जनता की सुरक्षा और हित को सर्वोपरि समझकर वह अपने राज्य का स्कंद गुप्त के पक्ष में त्याग करता है। वह स्कंदगुप्त द्वारा रक्षित मालव राज्य पर स्कंदगुप्त का अधिकार घोषित कर देता है। उसका यह त्याग सत्ता के लोभी राजनीतिज्ञों के लिए एक आदर्श है जो राष्ट्र की सुरक्षा की अपेक्षा स्वहितों को अधिमान देते हैं। राष्ट्र पर मंडरा रहे शक आक्रमण के विध्वंसकारी परिणामों का पूर्वानुमान लगा कर बंधुवर्मा राष्ट्र की सुरक्षा एवं अखंडता के उद्देश्य को केंद्र में रख कर परिपक्व राजनैतिक निर्णय लेता है," केवल स्वार्थ देखने का अवसर नहीं है यह ठीक है कि शकों के पतन काल में पुष्करणाधिपति स्वर्गीय महाराज सिंह वर्मा ने एक स्वतंत्र राज्य स्थापित किया और उनके वंशधर ही उस राज्य के मुख्य स्वत्वाधिकारी हैं, परन्तु उस राज्य का ध्वंस हो चुका था, उस समय तुम लोगों को केवल आत्महत्या का ही अवलंब शेष था—तब इन्हीं स्कंदगुप्त ने रक्षा की थी, यह राज्य न्याय से उन्हीं का है।"[८] इस प्रकार भारतीय राज्यों की क्षेत्रवादिता, परस्पर द्वेष, एवं आंतरिक कलह की समस्या को चिह्नित कर राष्ट्रीय एकता एवं अखंडता का सूत्र प्रदान करता है। बंधुवर्मा का यह यह तर्क उसकी राजनैतिक परिपक्वता का प्रमाण है "देवी, तुम नहीं देखती हो कि आर्यवर्त्त पर विपत्ति की मेघ घिर रही है, आर्य साम्राज्य अंतर्विरोध और दुर्बलता को को आक्रमणकारी भली भांति जान गए हैं। शीघ्र ही देशव्यापी युद्ध की संभावना है। इसलिए यह मेरी ही सम्मति कि

साम्राज्य की सुव्यवस्था के लिए आर्यराष्ट्र के त्राण के लिए युवराज उज्जयिनी में रहे— इसी में सबका कल्याण है। आर्यावर्त्त का जीवन केवल स्कंदगुप्त के कल्याण से है।"[९] राष्ट्र रक्षा के दायित्व के निर्वहन में अपना सर्वस्व आहूत कर देती की भावना से अनुप्राणित भीमवर्मा का यह कथन उसकी उद्दात राष्ट्रीयता का उद्‌बोधक है,"समस्त देश के कल्याण के लिए एक कुटुंब की भी नहीं, उसके क्षुद्र स्वार्थों की बलि होने दो भाभी!...देखो हमारा आर्यवर्त्त विपन्न है, यदि हम मर मिट कर भी इसकी कुछ सेवा कर सकें" [१०]

स्कंदगुप्त मालव राज्य के दूत को मालव की सुरक्षा का विश्वास दिला कर चाहे संधि की शर्तों से बद्ध होकर ही परन्तु राष्ट्रीय गौरव एवं एकता का सन्देश देता हुआ, मालव राज्य की सुरक्षा का प्रण कर क्षेत्रवादी विचारधारा के विपरीत राष्ट्रवादी विचारधारा का सूत्रपात करता है," शरणागत की रक्षा भी क्षत्रिय का धर्म है..सेनापति पर्णदत्त समस्त सेना लेकर पुष्यमित्रों की गति को रोकेंगे। अकेला स्कंदगुप्त मालव की रक्षा करने के लिए सन्नद्ध है। स्कन्दगुप्त के जीते जी मालव का नहीं बिगड़ सकेगा।"[११] स्कंदगुप्त अपने राजोचित एवं क्षत्रियोचित कर्तव्यों के निर्वहन एवं राष्ट्र को विदेशी आक्रांतों से मुक्त करवाने के लिए प्रतिबद्ध हो जाता है तथा उसका यह कथन उसके राष्ट्र के प्रति उत्तरदायित्व के निर्वहन की स्वीकारोक्ति है," आर्य! इस गुरुभार उत्तरदायित्व का सत्य से पालन कर सकूं और आर्य राष्ट्र की रक्षा में सर्वस्व अर्पण कर सकूँ, आप लोग इसके लिए भगवान से प्रार्थना कीजिए और आशीर्वाद दीजिए कि स्कंदगुप्त अपने कर्तव्य से—स्वदेश सेवा से कभी विचलित न हो।"[१२] राज्यश्री नाटक में हर्षवर्द्धन एवं पुलकेशिन के मध्य युद्ध के अंत में हर्षवर्धन अपने राज्यविस्तार की कामना मे निहित सम्पूर्ण भारत को सुगठित, सुव्यवस्थित एवं सुरक्षित करने का अपने लक्ष्य को उद्‌घाटित करता है जो उसकी राष्ट्रीयता का अकाट्य प्रतीक है। हर्षवर्द्धन का यह कथन उसके राष्ट्रभक्ति एवं राष्ट्रीयता का पारिचायक है," मैं अकारण दूसरों की भूमि हड़पने वाला दस्यु नहीं हूँ। यह एक संयोग है कि कामरूप से लेकर सुराष्ट्र तक, काश्मीर से लेकर रेवा तक, एक सुव्यवस्थित राष्ट्र हो गया। मुझे और न चाहिए।"[१३] राजनैतिक अस्थिरता सदैव शत्रुता एवं द्वेष भाव रखने वाली जातियों को अस्थिर राज्य में आतंक एवं उपद्रव फैलाने के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान करती हैं जिससे राष्ट्र को जन धन एवं सदनों की क्षति झेलनी पड़ती है। जन्मेजय का यह कथन इसी स्थिति को इंगित करता है," आपको नहीं मालूम, वे वन्य जातियां किस तरह सभ्य एवं सुखी प्रजा को तंग किया करती थीं। कन्याओं का अपहरण किया जाता था, धनी लूटे जाते थे, व्यवसाय का मार्ग बंद हो गया था। सीमा प्रान्त की दस्यु जातियों की उच्छृंखलता बढ़ती जा रही थी।"[१४]

चन्द्रगुप्त नाटक की पात्र अलका राष्ट्रीयता का जीवंत रूप है। राष्ट्रीयता से अनुप्राणित होकर वह अपने पिता एवं भाई का प्रतिरोध करती है तथा जन जन तक राष्ट्रीयता की भावना को जागृत करने के उद्देश्य से भ्रमणशील होती है। उसका यह कथन उसकी राष्ट्रीयता की भावना की तीव्रता को चिह्नित करता है," मेरा देश है, मेरे पहाड़ हैं, मेरी नदियां हैं और मेरे जंगल है। इस भूमि के एक एक परमाणु मेरे हैं और मेरे शरीर के एक एक क्षुद्र अंश उन्हीं परमाणुओं के बने हैं।"[१५] अजातशत्रु की स्त्री पात्र मल्लिका भी अपने पति सेनापति बंधुल को कौशल राज्य की सुरक्षा हेतु सर्वस्व समर्पित करने को प्रेरित करती है तथा अपनी तथा अपने परिवार की निष्ठा को राजपरिवार एवं कौशल राज्य के प्रति समर्पित करती हुई मल्लिका कहती है कि, "मैं प्राणनाथ को अपने कर्तव्य से च्युत नहीं कर सकती, और उनसे लौट आने का अनुरोध नहीं कर सकती। सेनापति का राजभक्त कुटुंब कभी विद्रोही नहीं होगा और राजा की आज्ञा से प्राण दे देना वह अपना धर्म समझेगा— जब तक कि राजा राष्ट्र का द्रोही प्रमाणित न हो जाए। [१६] राजमाता देवकी की हत्या के षड्यंत्र में भट्टार्क की भूमिका संज्ञान होने पर उसकी माता कमला आहत होती है तथा अपनी राष्ट्रीयता का परिचय देती हुई वह अपने पुत्र से भी उसी राष्ट्रभक्ति की कामना रखती है, "मुझे इसका दु:ख है कि मैं मर क्यों न गयी, मैं क्यों अपने कलंक पूर्ण जीवन को पालती रही। भटार्क, तेरी माँ को एक ही आशा थी कि पुत्र देश का सेवक होगा—मलेच्छों से पददलित भारत भूमि का उद्धार

करके मेरा कलंक धो डालेगा, मेरा सिर ऊँचा करेगा। परन्तु हाय!"[१७] "परंतु मुझे तुझ को पुत्र कहने में संकोच होता है लज्जा से गढ़ी जा रही हूं जिस जननी की संतान जिसका अभागा पुत्र ऐसा देशद्रोही हो उसको क्या मुंह दिखाना चाहिए।"[१८] प्रसाद जी ने अपने नाटकों में राष्ट्रीयता मूल्यों का सम्प्रेषण भारतीय एवं विदेशी पात्रों के मुख से भारत भूमि की प्रशंसा उद्गारों के माध्यम से की है। स्कंदगुप्त नाटक में धातुसेन भारत भूमि की ज्ञान सम्पदा, प्राकृतिक सुषुमा एवं विश्वकल्याण के दर्शन से प्रभावित होकर कहता है कि, "भारत समग्र विश्व का है और संपूर्ण वसुंधरा इसके प्रेमपाश में आबद्ध है अनादि काल से ज्ञान की मानवता की ज्योति वह विकीर्ण कर रहा है। वसुंधरा का हृदय भारत इस मुल्क को प्यारा नहीं है किस मूर्ख को प्यारा नहीं है तुम देखते नहीं की विश्व का सबसे ऊंचा श्रृंग इसके सिरहाने और गंभीर तथा विशाल समुद्र इसके चरणों के नीचे है एक से एक सुंदर दृश्य प्रकृति ने अपने इस घर में चित्रित कर रखा है भारत के कल्याण के लिए मेरा सर्वस्व अर्पित है।[१९] कल्याणी परिणय में कार्नेलिया भारतभूमि पर युद्ध, हिंसा रक्तपात का विरोध करती हुई भारत के प्रति अपने प्रेमभाव का प्रस्फुटन करती हुई कहती है कि, "भारत की पवित्र भूमि केवल हत्या लूट रक्त और युद्ध से वीभत्स बनाई जा रही है। वाह! कैसा सुंदर देश है! मुझे इस भूमि से जन्मभूमि का सा प्रेम होता जा रहा है"[२०] कल्याणी परिणय नाटक में राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्य बोध से प्रेरित हो सैनिकों से आह्वान करता है कि, "ग्रीक नर पशुओं को भारतीय पवित्र धरा से बाहर हाँक देना चाहिए। जिससे ये फिर हमारी शस्य श्यामला धरा की ओर लोलुप दृष्टि से न देखें।"[२१] सेल्यूकस की सेना को हारने के पश्चात् चंद्रगुप्त बंदी सेल्यूकस से भारत का पक्ष रखते हुए अपनी राष्ट्रीयता का परिचय देता है,"क्यों ग्रीक सम्राट! क्या युद्धपिपासा अभी नहीं मिटी? भारत को क्या आप लोगों ने मृगया का स्थान समझ लिया है। यह नहीं जानते कि मृगेंद्र भी उसी कानन में रहता है।"[२२]

साहित्यकार का मानस साधारण मानव के स्तर से पृथक एवं अपने आसपास के वातावण के प्रति अत्यंत संवेदनशील होता है। उसकी मेधाशक्ति धीमे एवं निरंतर घटित होते परिवर्तनों का कार्य कारण संबंधों सहित मूल्यांकन कर लेती है। वह अपने वर्तमान समाज का आलोचक एवं भावी समाज के सृजन का नियोजक होता है। उसके चित्त पर उसके तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तनों का प्रभाव पड़ना निश्चित है तथा उन परिवर्तनों का प्रभाव उसके द्वारा रचित साहित्य में परिलक्षित होता है। उसी प्रकार प्रसाद जी ने भी अपने समय की राष्ट्रीय समस्याओं का न केवल चित्रण किया अपितु उन समस्याओं के कारणों को भी पात्रों एवं घटनाओं के माध्यम से परिलक्षित किया एवं उन समस्याओं के समाधान सूत्र भारत के अतीत में ही ढूढ़ने का प्रयास किया तथा राष्ट्रीय गौरव एवं अस्मिता को चरम मूल्य के रूप में स्थापित किया।

संदर्भ

1. स्कंदगुप्त, अंक —१, दृश्य —६, पृष्ठ—६४, राजकमल प्रकाशन, नईदिल्ली
2. स्कंदगुप्त, अंक —१, दृश्य— ३, पृष्ठ—४९, राजकमल प्रकाशन, नईदिल्ली
3. स्कन्दगुप्त, अंक —१, दृश्य—१, पृष्ठ—४१, राजकमल प्रकाशन, नईदिल्ली
4. स्कंदगुप्त, अंक— ४, दृश्य— ५, पृष्ठ—१३८, राजकमल प्रकाशन
5. स्कंदगुप्त, अंक—३, दृश्य —३, पृष्ठ—११३, राजकमल प्रकाशन
6. स्कंदगुप्त, अंक—३, दृश्य —३, पृष्ठ—११४, राजकमल प्रकाशन
7. स्कंदगुप्त; अंक—१ ; दृश्य—५; पृष्ठ : ६१ ; राजकमल प्रकाशन, नईदिल्ली
8. स्कंदगुप्त, अंक—२, दृश्य —५, पृष्ठ—९१, राजकमल प्रकाशन, नईदिल्ली
9. स्कन्दगुप्त, अंक—२ दृश्य —५, पृष्ठ—९१, राजकमल प्रकाशन , नईदिल्ली
10. स्कंदगुप्त, अंक—२, दृश्य— ५, पृष्ठ —९३ राजकमल प्रकाशन, नईदिल्ली
11. स्कंदगुप्त, अंक—१, दृश्य—१, पृष्ठ—४१, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
12. स्कंदगुप्त, अंक—२, दृश्य— ६, पृष्ठ—९९ राजकमल प्रकाशन, नईदिल्ली

13. राज्यश्री, अंक—३, दृश्य —३, पृष्ठ —२५
14. जन्मेजय का नागयज्ञ, अंक—१, दृश्य—३, पृष्ठ —१९
15. चन्द्रगुप्त, अंक—१, दृश्य—१०, पृष्ठ—७८ , अनीता प्रकाशन, नईदिल्ली
16. अजातशत्रु, अंक—२, दृश्य —४, पृष्ठ—४६, मयूर पेपरबैक्स, नोएडा
17. स्कंदगुप्त, अंक—२, दृश्य— ६, पृष्ठ—९४ राजकमल प्रकाशन, नईदिल्ली
18. स्कंदगुप्त, अंक—४, दृश्य—ह्म, पृष्ठ—१३०, राजकमल प्रकाशन
19. स्कंदगुप्त, अंक—४, दृश्य —४, पृष्ठ—१३४, राजकमल प्रकाशन
20. मिश्र, डॉ सत्यप्रकाश, प्रसाद के सम्पूर्ण नाटक एवं एकांकी, कल्याणी परिणय, पृष्ठ:—७५
21. मिश्र, डॉ सत्यप्रकाश, प्रसाद के सम्पूर्ण नाटक एवं एकांकी, कल्याणी परिणय, पृष्ठ:—७४
22. मिश्र, डॉ सत्यप्रकाश, प्रसाद के सम्पूर्ण नाटक एवं एकांकी, कल्याणी परिणय, पृष्ठ:—७८

Aayushi International Interdisciplinary Research Journal
ISSN 2349-638X
www aiirjournal.com